धूपगढ़ की सुबह - साँझ

जीवन परिचय

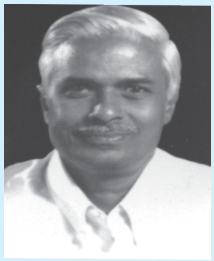

श्रीराम परिहार

डॉ. श्रीराम परिहार का जन्म खण्डवा जिले के छोटे से गाँव फेफरिया में 16 जनवरी सन् 1952 को हुआ। आपके पिता श्री देवाजी परिहार कृषक थे। आपका बचपन गाँव के प्राकृतिक सौन्दर्य में व्यतीत हुआ। माता श्रीमती लखूदेवी द्वारा बचपन से लोकगीतों एवं लोक संस्कारों का वातावरण प्राप्त हुआ। अत: आपकी लेखनी में लोक संस्कृति का दर्शन अनायास ही होने लगता है। वर्तमान में आप उच्च शिक्षा विभाग में कार्यरत् हैं।

आपकी प्रमुख रचनाओं में 'आँच अलाव की', 'अंधेरे में उम्मीद', 'धूप का अवसाद', 'ठिठके पल पाँखुरी पर', चौकस रहना है, झरते फूल हरसिंगार के,हंसा कहो पुरातन बात आदि हैं।

अनेक साहित्यिक संस्थाओं द्वारा आपकों सम्मान प्राप्त हो चुके हैं, जिसमें 'वगीश्वरी पुरस्कार',' ईसुरी पुरस्कार', 'दुष्यंत कुमार राष्ट्रीय अलंकरण' आदि प्रमुख हैं।

श्रीराम परिहार की भाषा संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली है। आपने अलंकारिक भाषा का प्रयोग करते हुए ललित शैली का प्रयोग किया है, जो आपकी विशेषता हैं।

केन्द्रीय भाव

अपने सूर्योदय और सूर्यास्त के नयनाभिराम दृश्यों के लिए पर्यटकों में विख्यात पचमढ़ी स्थित धूपगढ़ सतपुड़ा पर्वत श्रृंखला की सबसे ऊँची चोटी है। डॉ. श्रीराम परिहार ने अपने इस निबंध में इसी धूपगढ़ की प्रात: एवं सांध्य बेला का छायावादी चित्रण (प्रकृति का मानवीकरण) किया है। लेखक ने इसमें सुबह और साँझ के दो चिर प्रतीकों के माध्यम से जीवन और मृत्यु, सुख और दुख, आदि और अंत, उतार और चढ़ाव के गतिशील कालचक्र का शब्दांकन किया है। आलेख में प्रकृति के मनोरम दृश्य, वनवासियों की अभावग्रस्त किन्तु उन्मुक्त जीवन-शैली तथा वन्य पशुओं और वन्य प्रदेश की बनैली गंध है। लेखक ने सुबह और साँझ के द्वारा जीवन के संघर्ष और विश्वशान्ति के परस्पर संबंध, संतुलन और सामंजस्य को व्यक्त किया है। निबंध में प्रकृति का ज्ञान और चेतना का विज्ञान है, गति भी है और विराम भी इसमें जीवन का राग है और आत्मा का विराग भी। सुबह और साँझ एक दूसरे के विलोम नहीं बल्कि एक दूसरे के पूरक है। लेखक इस शब्द सेतु से मन मस्तिष्क को धूपगढ़ के प्राकृतिक सौन्दर्य तक पहुँचाने में सफल है।

समय की डाली पर सुबह और साँझ के दो फूल खिले हैं। दोनों का वर्ण एक होते हुए भी सुगन्ध भिन्न-भिन्न है। दोनों, दो समय-स्थितियों के प्रस्थान बिन्दु हैं। वसुन्धरा पर मासूम रंगों की अदृश्य कूँची से उकेरे जाने वाले दिक्काल के उद्‌गम हैं। सुबह पखेरूओं के पंखों पर गतिमान होकर नये देश क्षितिज तक जाती है। साँझ, उन्ही पंखों पर ढ़ेर सारा आत्मविश्वास और कर्म पूर्णता की तृप्ति लेकर अपने घर गाँव लौटती है। सबेरा पाँवों में पंख लगाकर जीवन को अग्नि-कण चुनने भेजता है। साँझ, अग्निमय जीवन को कल्याणी शीतल आँच के साथ घर लौटाती है। पिता की-सी प्रेरणा और शक्ति सम्पन्नता सबेरे के पास है। माँ की-सी ममता और हृदय रसज्ञता साँझ के पास है। उसकी ममता को प्रकृति पत्र-पत्र पर अलिखित पाती-सा देखते हैं। उसकी रसज्ञता फलों के रस में और जीवन के रस में अनुभव करते हैं। साँझ नयी भोर तक जाने तक की यात्रा का आरंभ है।

वैसे तो कई सुबहों और शामों की प्रकाश- भीगी पलकों को उठते-गिरते देखा है, परन्तु उन साँझों में एक साँझ यादों के वृत पर फल की तरह लगी हुई है। धूपगढ़ की साँझ का रूप, रंग, आकार, रस सब कुछ निराकार बनकर मन के अंतरिक्ष में फैला हुआ है। पचमढ़ी, पर्वतों की रानी कही जाती है। सतपुड़ा का सारा निसर्गगत सौन्दर्य पचमढ़ी की गोदी में झूल रहा है। खाइयाँ और पहाड़ियाँ अपनी- अपनी दिशा मे जाकर गहराई और ऊँचाई की नाप बन जाती हैं, खाइयाँ अनमापी गहराई को नापती-सी लगती हैं। पहाड़ियाँ

ऊँचाई को गौरव देती हैं। इसी पचमढ़ी में स्थित है- धूपगढ़, सुबह आकर सबसे पहले इसे प्रणाम करती है। साँझ जाते-जाते सबसे आखिरी में इससे विदा लेती है। प्रकाश सबसे लंबा स्नान यही करता है । धूपगढ़ की सुबह निराली है। धूपगढ़ की साँझ सुहानी है। धूपगढ़ सतपुड़ा का गौरव है। इस गौरव को सुबह साँझ धूप-स्नान कराती है। कुंकुम और रोली का टीका भी लगाती है। धूपगढ़ की उज्ज्वल हँसी वनवासियों की रूखी नंगी देह को शीतल स्पर्श देने की कोशिश करती है। धूपगढ़ स्थित पेड़ों से दो चार पत्ते घर लौटते वनवासी की पाग पर गिर जाते हैं। दो चार फूल वनवासी स्त्री की चूनर में टँक जाते हैं। यह देख साँझ की आँखों में करुणा उभर आती है।

धूपगढ़ की सुबह देखी है साँझ भी देखी है। दोनों में किसका सौंदर्य ज्यादा है? किसका रंग घना है? किसका प्रभाव गहरा है? नहीं कह सकते। यह तुलना ही अनुचित है। सुबह, सुबह है । साँझ, साँझ है। दोनों की अपनी दुनिया है। अपनी महिमा है। अपना सम्मोहन है। सामान्यत: सुबह और साँझ अपने प्राकृतिक चक्र के कारण सहज रूप में आती जाती हैं। इनके होने में प्रकृति की इच्छा ही अभिव्यक्त होती है। उसी निसर्ग का आह्लाद इनमें पिघलकर बगरता है। परन्तु स्थान-स्थान पर इन सुबहों-साँझों की मुद्राएँ और भंगिमाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। कोई स्थान ऐसा होता है कि उसे पाकर प्रकृति शृंगारित हो उठती है जिसके होने से उस भू-भाग के क्षितिजों तक निशि-वासर उत्सव मनाता रहता है। उस वन क्षेत्र के जीवों की निर्धनता का भी एक सुख होता है। भौतिक निर्धनता की पूर्ति उस क्षेत्र में प्रकृति अपने सान्निध्य के सुख से करती है। इस तरह के सुख के केन्द्र में स्वतंत्रता और उन्मुक्तता होती है, जो मनुष्य और मनुतर जीवों की प्राकृतिक प्रकृति है।

धूपगढ़ की सुबह को देखने के लिए ब्रह्ममुहूर्त में जागना होता है। घर्र-घर्र नाद वाली लौह-गाड़ी पर सवार होकर वन-वल्लरियों के बीच से ऊपर चढ़ना होता है। बीच में छोटी गहरी नदी पार करनी होती है। फिर एक अनबूझी और अनमापी चढ़ाई पर बढ़ते जाना। परिकल्पना के पंखों पर तैरते हुए ऊपर और ऊपर चढ़ते चले जाना गोल घुमावदार पथ पर कहीं-कहीं हल्का-सा टकराता हुआ भय दबे पाँव आता है । उधर सिंह रहता है। कल ही एक गाय को चौरागढ़ के पास सिंह ने मार डाला। विकट चढ़ाई, नीचे देखें तो साँस रुकती-सी जाती-सी जान पड़ती है। ऊपर देखो तो कांतिपूर्ण प्रात: मुख को देख लेने की आशा आमंत्रण बाँटती-सी नजर आती है। चढ़ाई खत्म। और धूपगढ़ के ऊपर समतल भाग में पाँव-पाँव जमीन को छूकर अपने होने के प्रमाण पाने की अविजित खुशी को पा लेना। धूपगढ़ का पूर्वी छोर। जहाँ से सूर्योदय दिखाई देता है वह सतपुड़ा की सबसे ऊँची चोटी है, जहाँ गगन से सूर्योदय के प्रकाश का अमृत झरता है। किरणें फूटती हैं और रश्मि-सेतु सूर्य से लेकर धूपगढ़ की चोटी तक बन जाता है। इसे देखना अच्छा लगता है। इस रश्मि सेतु पर चलकर सूर्य तक कोई बिरला ही पहुँचता है।

प्राची के हिरण्य गर्भ से बालारुण की जन्म बेला की प्रतीक्षा में विश्वमोहिनी शक्ति जैसे जाग गई हो। क्षितिज पर पतली-सी रेखा उभरती है और बालक की किलकारी दिशाओं तक फैल जाती है। पक्षी उसी किलक को अपने स्वरों में भरकर आकाश को जाते हैं। क्षितिज पर भुवन भास्कर की पहली रेखा । जैसे किसी बालक ने पूरब की स्लेट पर स्वर्णिम पेन से लकीर खींच दी हो; जिसका बीच का भाग ऊपर की ओर हल्का-सा उठा हुआ है। जैसे अंधेरे के महासमुद्र में आती हुई उषा का जल सतह पर सुनहरे रंग का 'केश बंध' (हेयर बेंड) दिखाई दे रहा हो । जैसे युद्ध में विजय के बाद भारत वर्ष ने अपनी विजय-प्रतीक स्वर्णिम कटार प्रकृति के महाटेबल पर रख दी हो। जैसे संतरे की रंगभरी फाँक रात्रि ने उषा की हथेली पर धर दी हो। धीरे-धीरे आदित्य तरबूज की फाँख सरीखा आधा उभर आता है। उषा का जैसे भाल साफ निकल आया हो। भारतवर्ष की स्वतंत्रता की अर्धशती जैसे सूर्य-गोलक बनकर महानिलय में झाँक रही हो। और फिर सूर्य-बिम्ब। जैसे कुंकुम नहाया कलश किरण-पूरित चौक पर धर दिया हो। या महाकुम्भकार ने लाल मिट्टी का घड़ा अँधेरे की सड़क पर तृषित मानव की तृषा-तृप्ति के लिए भर दिया हो या भूमण्डल पर जितने भी सेवाभावी मनुष्य हैं, उनकी निष्कलुष गैरिक वसना सेवा-भावना स्वर्ण कलश-सी चमक लेकर मूर्त हो उठी हो।

धूपगढ़ के सूर्योदयिक क्षण को प्रत्येक दृष्टा अपनी नील-कुसुमित आँखों में आँज लेना चाहता है। सारी वनस्पति अपने प्रणाम सूर्य को अर्पित कर देती है। माधवी लताओं के हाथों में फूल आ जाते हैं। वनैली गंध सुबह की हवा में घुलकर सुमनों का स्पर्श करती है और क्षण दो क्षण मे वह सौरभित पवन रूखे गालों और सूखे बालों में वह भरने

लगता है। सूर्य की प्रातिभ लालिमा कण–कण तक पहुँच जाती है। सब अँधेरे के समुद्र से निकलकर अपनी देह निथारनें लगते हैं। अपने–अपने स्वरूप पहचानने लगते हैं । सब अपने–अपने रंग में पुनः रंग जाते हैं। सकल वानस्पतिक चेतना, सूर्य स्थित महाचेतना से संवाद करने लगती है । प्रातः की धरती का वह सौंदर्य शब्दों में अट नहीं पाता । वह रूप राशि इच्छाओं की लता सी देह यष्टि। उभरे वक्ष भागों पर हवा की लहर से काँपते हुए घास पात के केश पुञ्ज। अल्हड़ ठवनि। पक्षियों–भौरों के मिस गुनगुनगनाते अधर। सुरभित साँसों में अपनत्व की ऊष्णता। नूपुरों में कर्ण –आह्लादन लय। प्राकृतिक–चेतन–सौंदर्य का यह सप्त वर्णी ज्वार कब कोई अपने हृदय में पूरी तरह समेट सका है?

मधुरिमा के देश को जाने की यह धूपगढ़ी गमनशीलता चेतना की सारस्वत यात्रा की पूर्व पीठिका–सी लगती है। झंझटों के झुरमुटों से निकलना। जीवन–संघर्ष की गहरी–अथाह नदी को पार करना। शून्य–शिखर गढ़ की चढ़ाई में अनहद नाद की ध्वनि की झंकार का कर्ण–पदों से टकराना मन के शृंगों का नीचे और नीचे छूटते चले जाना । पारद शिराओं का शांत होकर चेतना की भाव भूमि पर नत शिर होना। तर्क पीड़ित बुद्धि से जड़ता का भर जाना। दाह पीड़ित लहराते मदमाते शीश का भू लुंठित होना। मचलते हरिण शावक–से हृदय को उन्मुक्त धरा पर नवल गति मिल जाना । अकिंचन सूखते से तृण–विटप में नवल किसलय का पल्लवन होना। फिर अगरू वासित मलय शीतल सप्तपर्णी विटप की छाया में चेतना का विश्राम करना । और तिमिर के ज्वार में डूबी मानवता की हथेली पर गर्व उन्नत अडिग जलते दीप का धर देना । बस ऐसा ही आभास धूपगढ़ के गर्वोन्नत और अचञ्चल शिखर पर पहुँचते हुए होता है। वहाँ से चेतना का रुख स्वर्ग सरीखी कल्पित भूमि पर पहुँचने का नहीं, बल्कि अनुपात–पूरित तप्त जलती मानवता की मुक्ति की ओर हो जाता है।

धूपगढ़ की साँझ महाचेता के मनोमय कोश के अनुराग का राग है । दिवस की प्राण वल्लभा साँझ अपनी विराट लीला के अतीन्द्रिय सौदंर्य से सब पर सम्मोहन का आवरण डालती है। विश्रान्ति का मलयज – चीर सबको भेंट करती है । दिवस के संघर्षरत सूर्य–बटोही को अपने अंक में सुला लेती है। धूपगढ़ के शीर्ष से हजारों कोसों दूर यह ममत्व उत्कर्षण पश्चिम – क्षितिज पर होता है, जिसकी विस्मय – विमुग्ध लोल–लहरियाँ तृण – लता –विटप से लेकर गिरि–खोह, नदी – समुद्र, महल–कुटी तक फैल जाती हैं।

तमतमाते दिवस की अवसान बेला में सब कुछ शांत है, वनस्पति शांत है, पक्षी शांत हैं, सांसारिक प्रपंच शांत है, श्वेत वर्णी दिवस – नभ की नीलिमा शांत है, अनथकी उड़ान झुरमुट में शांत है, तेज दौड़ शांत है, थरथराती आवाजें शांत हैं, दिन डूब रहा है। साँझ हो रही है। धूपगढ़ से लेकर सांध्य क्षितिज तक फैली इस सतपुड़िया भूमि पर नील कबरी के नूपुरों के धूलि कण तैरने लगते हैं। इस विशाल वन प्रांतर में प्यासे बंजारे–सा–भूला बटोही आवाज लगाता है।। दिशाएँ प्रत्युत्तर में प्रति आवाज देती है। नभ का जगमगाता प्रभाकर बुझ गया है। द्वार का टिमटिमाता दीपक उस बटोही को आमंत्रण देता है। धूल–धूसरित थके – हारे पाँव दरवाजे पर आकर थम जाते हैं। पीड़ा से छटपटाती देह स्लथ होकर प्राण वल्लभा के अंक में गिर जाती है। कम्पित अधरों का मौन, दृग–धार बनकर फूटता है। मृग मरीचिका की काली छाया में से अपने अस्तित्व को संभाले हुए जीवन का मन्दिर चाँदी–सा उभरता है जिसके सत्कर्म के स्वर्ण कलश की चमक नीले आकाश में भास्वर चमकती है।

यह साँझ पृथ्वी को अमृत, सोम , शीतलता और दुग्ध धार देने वाली है। यह वनैले पशुओं की जागरण बेला है। इसमें मनुष्य जीवन की अलस भरी है , तो हिंस्र पशुओं की अंगड़ाई भी है। मनुष्य और मनुष्येत्तर जीव इसकी अतिथि शाला में विश्राम कर सूर्य की पहली किरण के साथ पुनः धरती को नापने हेतु उत्फुल्ल होते हैं, जो जंगल राज का राजा अपनी कर्णभेदी दहाड़ से सारसवर्णी जीवों की साँसोच्छेदन में तत्पर भी होता हैं। जन्म और मृत्यु प्रकृति के लिए दो सहज स्थितियाँ हैं। उसका यह खेल है। उसके लिए दोनों ही सुख–दुख का कारण नहीं हैं। सुबह और साँझ भी प्रकृति की सहजात गति है।

इस महानिलय में भोर और साँझ पलक उठने और गिरने के सिवाय और कुछ नहीं है सुबह की लालिमा में न तो प्रसन्नता होती है और न ही साँझ की पीताभ में उदासी। प्रकृति सुख–दुख से परे है। वह नियंता है। सुबह साँझ उसी

नियंता प्रकृति की ऊदी-ऊदी आँखे हैं जिनमें श्वेत-रतनार रहस्य भरा है। उस रहस्य की बोरगंध पृथ्वी पर वानस्पतिक सृष्टि और जीवन सृष्टि में ही फलित होती है। सुबह-साँझ का बरसता हुआ अहेतुक वात्सल्य ही सृष्टि का जीवन है। समय चक्र है। इसका आदि अंत नहीं है। सुबह-साँझ न उदय है न अंत। दोनों ही समय चक्र में नव्य और शुभ्र जोड़ने की अनुरागमयी बेलाएँ हैं

अभ्यास

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) धूपगढ़ कहाँ स्थित है?

(2) प्रकृति की दो सहज स्थितियाँ कौन सी हैं?

(3) सतपुड़ा का गौरव किसे कहा गया है?

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) लेखक ने सुबह और साँझ की तुलना माता-पिता के किन गुणों से की है ?

(2) साँझ की आँखों में करुणा क्यों उभर आती है ?

(3) सुबह और साँझ की परस्पर तुलना क्यों अनुचित है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) लेखक ने प्रातः कालीन पूर्ण सूर्य बिम्ब की तुलना किन-किन बातों से की है ?

(2) तमतमाते दिवस की अवसान बेला कैसी है ?

(3) लेखक सुबह और साँझ के माध्यम से क्या कहना चाहता है?

(4) लेखक की भाषा अलंकारिक तथा शैली ललित है । उदाहरण देते हुए स्पष्ट कीजिए।

(5) इन गद्यांशों की संदर्भ एवं प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए -

(1) गगन से सूर्योदय ..... बिरला ही पहुँचता है।

(2) धूपगढ़ की साँझ .....सुला लेती है।

(3) मधुरिमा के देश ..... छूटते चले जाना।

(6) निम्नलिखित पंक्तियों का भाव पल्लवन कीजिए-

उपर्युक्त पंक्तियों का भाव पल्लवन कीजिये ।

(क) ''प्रकृति सुख-दुख से परे है। वह नियंता है।''

(ख) ''जन्म और मृत्यु प्रकृति के लिए दो सहज स्थितियाँ हैं।''

(ग) ''सुख के केन्द्र में स्वतंत्रता और उन्मुक्तता होती है।''

भाषा अध्ययन-

(1) निम्नलिखित शब्दों में से प्रत्यय ओर उपसर्ग छाँटकर लिखिए-

प्रस्थान, मनुष्यता, उन्मुक्तता, उज्ज्वल, तन्मयता,अविजित,नैसर्गिक , प्राकृतिक

(2) निम्नलिखित शब्दों के तत्सम रूप लिखिए–
सुबह, साँझ, गाँव, पाँव, आँच

(3) निम्नलिखित वाक्यांश के लिए एक शब्द लिखिए–

(1) जहाँ जाया न जा सके।

(2) जिसकी उपमा न हो ।

(3) जिसे पढ़ा न हो ।

(4) काँटो से भरा हुआ।

(5) आकाश को छूने वाला।

(6) सदा रहने वाला।

पढ़िए और समझिए

* रुको मत जाओ। (कोई आशय स्पष्ट नहीं)

* रुको, मत जाओ। (इस वाक्य में जाने से मना किया जा रहा है)

* रुको मत, जाओ। (इस बात में जानें की बात कही गई है)

एक ही वाक्य के तीन आशय लिखने और बोलने से अलग अलग निकलते हैं बोलनें में यदि पहले वाक्य को सीधे सपाट बोल दिया जाए तो कथन का आशय ही स्पष्ट नहीं होता किंतु रुको शब्द के बाद थोड़ा सा ठहर कर मत जाओ वाक्यांश को कहें तो स्पष्ट रुप से जाने के लिए मना किया गया है, अब यदि यही वाक्य रुको मत के बाद भी रुककर जाओ कहा जाए तो जाने के लिए आदेश स्पष्ट रुप से दिया जाता है वास्तव में यह अर्थ या आशय वाक्य में विराम के ठहराव के कारण आता है। अत: लेखन में विराम का बहुत महत्व है।

(4) निम्नलिखित वाक्य में विराम चिह्नों का यथा स्थान प्रयोग कीजिए–
सह साँझ पृथ्वी को अमृत सोम शीतलता और दुग्ध धार देने वाली हैं

योग्यता विस्तार

1. मध्यप्रदेश के अन्य प्राकृतिक व ऐतिहासिक स्थलों के विषय में जानकारी संकलित कीजिए।
2. धूपगढ़ के स्थान पर अपने मनपसंद स्थान की सुबह व शाम का वर्णन कीजिए।
3. क्या आप किसी स्थान विशेष का भ्रमण करना चाहेंगे? कारण सहित लिखिए।

शब्दार्थ

कर्म-पूर्णता *– काम के पूरा होने का भाव,* ***अग्निमय****–आग से भरा हुआ,* ***हृदय रसज्ञता****–हृदय के रस को जानने की क्षमता,* ***निसर्गगत सौंदर्य****–प्राकृतिक सुन्दरता,* ***पाग****–पगड़ी,* ***निशि – वासर*** *– रात – दिन,* ***वन – वल्लरियों****– लताओं,* ***प्राची****–पूर्व दिशा,* ***हिरण्य-गर्भ*** *– स्वर्ण या सोने की कोख,* ***बालारुण****–प्रात: कालीन सूर्य,* ***महानिलय****– आकाश,* ***तृषा****– तृप्ति, – प्यास बुझाने के लिए,* ***निष्कलुष****– पवित्र,* ***गैरिक वसना*** *– गेरूए वस्त्र धारण करने वाली,* ***नील-कुसुमित****– नील कलिका, नीले पुष्प के रूप में खिलना,* ***माधवीलता****–माधवीपुष्प की लता,* ***प्रातिभ****– प्रात: कालीन सूर्य की लाली,* ***देह यष्टि****– शरीर की बनावट,शरीर सौष्ठव,* ***अल्हड़ ठवनि****–चंचल मुद्रा,* ***कर्ण आह्लादन****– कानों में खुशी उत्पन्न करने वाली,* ***सारस्वत****–ज्ञानमयी, बौद्धिक,* ***पूर्वपीठिका****–पहली भूमिका,* ***अनुताप-पूरित*** *– दुख से भरा हुआ,* ***तिमिर****– अंधकार,* ***प्राणवल्लभा****–प्रेयसी, प्रियतमा,* ***मलयज चीर****–सुगंधितवस्त्र, मलय चंदन गंध से सुगंधित,* ***मृग मरीचिका****– मृगतृष्णा मिथ्या प्रतीति* ***भास्वर*** *–प्रकाशवान,* ***उत्फुल****–प्रसन्न,* ***सारसवर्णी****–सारस के रंग वाली,* ***साँसोच्छेदन*** *– साँसों को समाप्त करना,* ***अहेतुक****–बिना किसी हेतु के/स्वार्थहीन* ***वात्सल्य****–संतान के प्रति माता-पिता का प्रेम,* ***स्लथ****–थकी।*

***